B.A. III year
Paper VI

NBP WARE उत्तरी कृष्ण परिमार्जित मृद्भाण्ड :—

सर्वप्रथम तक्षशिला नामक स्थल से उत्तरी कृष्ण परिमार्जित मृद्भाण्ड सन् 1934 में प्राप्त हुए थे। मार्शल ने इसे ब्लैक ग्लेज्ड वेयर (Black glazed ware) की संज्ञा दी थी। इस संस्कृति का विस्तार पाकिस्तान में तक्षशिला (रावलपिंडी) चारसद्दा, उदग्राम (पेशावर) तिलौरा कोट (नेपाल की तराई) तथा भारत में प्रभास पाटन (गुजरात) नासिक (महाराष्ट्र) तमलुक चन्द्रकेतुगढ़ (पश्चिम-बंगाल), शिशुपालगढ़ (उड़ीसा) नागार्जुन कोण्डा (दक्षिण भारत) तथा बंगला देश में बानगढ़ तथा पहाड़पुर तक हुआ था।

प्रारम्भ में इसके इस चमक को पालिश समझा गया किन्तु यह रंग न तो पूरी तरह काला था और न ही इस पर पालिश की गई थी। इन पात्रों को चमकीला बनाने हेतु अलकली (Alkali) का लेप लगाया जाता था, एवं पकने के उपरान्त काली चमक युक्त रसायन का लेप किया जाता था। कालान्तर में अन्य अनेक रंग जिनमें सुनहले, रुपहले, नारंगी, गुलाबी, नीला आदि प्राप्त हुए थे। आज भी ये पात्र परम्परा कृष्ण पात्र परिमार्जित परम्परा के नाम से प्रचलित है। वस्तुत मूल रूप से इस संस्कृति के उत्तर उदाहरण उत्तर भारतीय क्षेत्र से ही प्राप्त होते हैं। वर्तमान में N.B.P. परम्परा दक्षिण भारत में भी मिलती है।

इन हल्के-पतले कृष्ण परिमार्जित मृद्भाण्डों को भली प्रकार सनी हुई मिट्टी से चाक द्वारा बनाया जाता था। इन पात्रों में कटोरे, ढक्कन, सीधी व अंदर की ओर मुड़ी हुई किनारे वाली थालियां, हांडियां, कलश आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें कुछ पात्र मोटे कुछ पतले दोनों प्रकार के निर्मित किए गए हैं। ये पात्र सफाई से

Scanned with CamScanner

उच्च तापमान पर पकाये जाते हैं। इन पात्रों पर चित्रांकन भी किया गया है। चित्राकृतियों में पट्टी, रेखायें, वृत, अर्द्धवृत, लहरिया, बिन्दु, समूह का प्रयोग मुख्य रूप से मिलता है। हस्तिनापुर, कौशाम्बी, श्रावस्ती तथा वहल स्थलों से उत्खनन से प्राप्त इस संस्कृति के पात्रों पर उपरोक्त प्रकार की चित्रकारी की गयी है। चित्रण मुख्यतया काले रंग से किया गया है। कुछ पात्रों पर ठप्पा (छाप) चित्रांकन भी मिलता है जैसे-कलश व प्यालों आदि।

पात्रों के अतिरिक्त निवास स्थल के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस संस्कृति के भवन, बहुधा बाँस बल्लियों द्वारा बनाये जाते थे। इनमें मिट्टी, घास-फूस के अतिरिक्त कहीं कहीं ईंटों का प्रयोग मिलता है। ईंटों का प्रयोग विशेष रूप से मथुरा, कौशाम्बी, हस्तिनापुर, राजघाट, उज्जैन आदि पुरा स्थलों से प्राप्त हुए हैं। कौशाम्बी में खुली व ढकी हुई नालियों के प्रमाण मिलते हैं। सफाई एवं स्वच्छता की दृष्टि से बनाये गए मृतिका वलय कूपों एवं सोख्ता गड्ढों के अवशेष भी कहीं कहीं देखने को मिलते हैं। कौशाम्बी, अहिच्छत्रा, राजगृह और उज्जैन में परिखा एवं रक्षा प्राचीरों के अवशेष मिलते हैं। अधिकतर रक्षा प्राचीर मिट्टी से निर्मित हैं किन्तु कहीं-कहीं इन्हें अधिक सुदृढ़ बनाने हेतु ईंटों का भी प्रयोग किया गया है।

इस संस्कृति से प्राप्त उत्कृष्ट लौह उपकरण इस बात के परिचायक हैं कि तत्कालीन मानव लोहे द्वारा उपकरण निर्माण की तकनीक से भली-भांति परिचित था। लोहे के अतिरिक्त ताम्र एवं काष्ठ के भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं। किन्तु लौह धातु सर्वाधिक प्रचलित थी। ये तथ्य लौह उपकरणों के प्रकारों द्वारा स्पष्ट होती है। चाकू, कटार, हंसिया, छेनी-कीलें, भाले, आदि उल्लेखनीय उपकरण हैं। इनके अतिरिक्त गृहोपयोगी कड़ाही एवं दीपक भी प्राप्त हुए हैं।

उत्तरी कृष्ण परिमार्जित मृद्भाण्ड

Scanned with CamScanner

परम्परा से मानव की खाद्य सामग्री का अनुमान पुरास्थलों से प्राप्त अनाज के दानों एवं पशुओं की अस्थियों से होता है। इस संस्कृति के मानव मुख्य रूप से मांसाहारी रहे होंगे। गाय, बैल, भेड़, बकरी अश्व एवं सुअरों के पालन का मुख्य उद्देश्य मात्र भारी कार्य करवाना एवं दूध आदि की प्राप्ति नहीं था अपितु आवश्यकतानुसार इनके माँस का प्रयोग भोजन के रूप में भी किया जाता था। पशु अस्थियों पर काटे जाने के प्रमाण इस बात के परिचायक हैं। ये कृषक भी थे- अतः गेहूँ, जौ, चावल, दलहन आदि का भी प्रयोग भोजन के लिए करते थे।

उत्तरी कृष्ण परिमार्जित मृद्भाण्ड काल में प्रथमतः सिक्कों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ था। आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति तथा वस्तु विनिमय हेतु ही सिक्कों का निर्माण हुआ होगा। ये प्राचीनतम आहत सिक्के ताम्र एवं रजत से निर्मित थे। संभवतः सिक्कों के प्रयोग ने तत्कालीन व्यापार को भी प्रभावित किया। फलतः व्यापार की प्रगति हुई। यहाँ से प्राप्त चाँदी एवं ताम्र द्वारा निर्मित आहत मुद्राओं को भी इसी काल के सिक्कों के रूप में माना जाता है।

उपर्युक्त सामग्रियों के अतिरिक्त इस काल (N.B.P.) की कृष्ण मूर्तियां तत्कालीन मानव की कला रुचि एवं कारी-- कौशल की परिचायक हैं। इन मूर्तियों में मानव पशु आदि सभी की मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं। अधिकतर पशु मूर्तियों में अश्व, भेड़, बैल, कुत्ते, हाथी, हिरण, की प्राप्ति होती है। हस्त निर्मित इन पशु मूर्तियों के अतिरिक्त पक्षियों एवं सरीसृपों की मूर्तियाँ भी कलात्मक ढंग से गढ़ी गई हैं। गेरूआ लेप युक्त ये काली एवं धूसर मूर्तियाँ अहिच्छत्रा, मथुरा, कौशाम्बी से तथा पीली रेखांकन युक्त मृण्मूर्तियां बक्सर नामक स्थल से मिली हैं।

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त सांचे से ढली हुई मानव प्रतिमाएं भी प्राप्त हुई

आभूषणों से सुसज्जित बेहतरीन केश सज्जा वाली है। हस्तिनापुर से प्राप्त प्रोषिक पतिका का शारीरिक अंकन विशेष आकर्षण लिए हुए है। हस्तिनापुर से ही प्राप्त पशुमानव मूर्तियां कलात्मकता की परिचायक है जिसका शरीर पशु एवं मुख मानव का है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसे मूर्तियाँ मिली हैं जो तत्कालीन कलाकार के कला-कौशल की परिचायक है। इस संस्कृति के आभूषणों में अंगूठियाँ चूड़ियां कड़े आदि है। ये आभूषण ताम्र, मिट्टी, अस्थियों आदि द्वारा निर्मित है। इनके साथ ही त्रिभुजाकार, गोलाकार, बेलनाकार है। ये मनके मिट्टी माणिक्य प्रस्तर कांच हाथीदांत, अस्थि आदि से निर्मित है। इनके अतिरिक्त ताम्रपिन, कंघियों तथा अस्थि शलाकाएँ भी प्राप्त होती हैं।

कालक्रम :→

विभिन्न स्थलों से प्राप्त एवं रेडियो कार्बन तिथियों के आधार पर इस संस्कृति का कालक्रम 600 ई० पूर्व से 100 ई० पू० के मध्य का पाया जाता है।